स्वतंत्र भारत में मानवाधिकार कानूनों पर उपनिवेशी धरोहर का प्रभाव

[1]सुशील चंद्रा द्विवेदी [2]डॉ. गजेंद्र साहू
[1]शोधार्थी, [2]पर्यवेक्षक
[1–2]विभागः इतिहास, भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग, छत्तीसगढ

सार
स्वतंत्रता के बाद भारत में मानवाधिकार कानूनों का विकास औपनिवेशिक धरोहर और स्वतंत्रता संग्राम के सामाजिक–राजनीतिक संघर्षों से गहरे रूप से प्रभावित हुआ है। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारत ने औपनिवेशिक दासता से एक संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य बनने की दिशा में परिवर्तनकारी यात्रा शुरू की। यह शोध पत्र भारत के कानूनी और संवैधानिक ढांचे पर ब्रिटिश उपनिवेशवाद के प्रभाव, ब्रिटिश कानूनी संरचनाओं के उत्तराधिकार और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मानवाधिकारों के ढांचे में उनके रूपांतरण का अध्ययन करता है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की स्वीकृति, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन द्वारा निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका और उस समय वैश्विक मानवाधिकार प्रवृत्तियों ने भारत के मानवाधिकार कानूनों को आकार देने में योगदान किया। यह शोध पत्र उपनिवेशी धरोहर से उत्पन्न चुनौतियों को भी उजागर करता है और यह बताता है कि इन्हें स्वतंत्र भारत में न्यायिक व्याख्याओं और संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से किस प्रकार संबोधित किया गया।

मुख्य शब्दः औपनिवेशिक धरोहर, मानवाधिकार कानून, स्वतंत्रता के बाद भारत, भारतीय संविधान, मौलिक अधिकार, न्यायिक सक्रियता, ब्रिटिश उपनिवेशवाद।

परिचय

स्वतंत्रता के बाद के भारत में मानवाधिकार कानून के विकास का परिचय औपनिवेशिक गुलामी से लोकतांत्रिक कानूनी ढांचे तक के परिवर्तनकारी सफर को समझने के लिए आधार प्रदान करता है। यह खंड 1947 में स्वतंत्रता के बाद के भारत के सामाजिक–राजनीतिक और ऐतिहासिक परिदृश्य में मानवाधिकारों को स्थापित करके पृष्ठभूमि तैयार करेगा। यह स्वतंत्रता के बाद मानवाधिकार कानून को आकार देने में योगदान देने वाले कारकों पर प्रकाश डालेगा और उभरते कानूनी संरक्षणों और मानवाधिकार मानदंडों की स्पष्ट समझ स्थापित करेगा।

स्वतंत्रता के बाद मानवाधिकारों का ऐतिहासिक संदर्भ

स्वतंत्रता के बाद भारत में मानवाधिकारों का इतिहास औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध संघर्षों, सामाजिक–राजनीतिक अशांति और एक नई राष्ट्रीय पहचान के निर्माण से गहराई से जुड़ा हुआ है। स्वतंत्रता के बाद मानवाधिकारों के परिदृश्य को कई प्रमुख कारकों ने प्रभावित कियाः

औपनिवेशिक विरासत और ब्रिटिश राजः ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के तहत, भारत की विधि प्रणाली ब्रिटिश विधि प्रणाली से अत्यधिक प्रभावित थी, जिसमें व्यक्तिगत अधिकारों पर विशेष बल नहीं दिया जाता था। नागरिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के बजाय, औपनिवेशिक प्रशासन अक्सर राजद्रोह कानूनों जैसे दमनकारी कानून लागू करता था, जो अभिव्यक्ति और सभा की स्वतंत्रता को सीमित करते थे। 1860 में ब्रिटिश शासन के दौरान लागू भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) में अपराधों को परिभाषित तो किया गया था, लेकिन व्यक्तिगत

मानवाधिकारों की रक्षा के लिए विशिष्ट प्रावधानों का अभाव था।[1] इसके अलावा, औपनिवेशिक नीतियां अक्सर कानून और व्यवस्था बनाए रखने के बहाने भारतीय नागरिकों, विशेषकर हाशिए पर पड़े समूहों के दमन को उचित ठहराती थीं।

औपनिवेशिक काल में भारतीय नागरिकों के लिए कोई औपचारिक, संवैधानिक रूप से स्थापित मानवाधिकार नहीं थे, जिससे एक ऐसा खालीपन पैदा हो गया जिसे स्वतंत्रता के बाद के नेताओं ने भरने का प्रयास किया। हालांकि, महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं के नेतृत्व में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने अहिंसा, सविनय अवज्ञा और स्वशासन (स्वराज) जैसे मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया, जिसने बाद में मानवाधिकारों की वकालत की नींव रखी।

राष्ट्रीय आंदोलनों की भूमिकाः भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने उन मूल्यों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जो बाद में स्वतंत्रता के बाद के मानवाधिकार ढांचे में परिलक्षित हुए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं और अन्य स्वतंत्रता सेनानियों ने बुनियादी मानवीय गरिमा की रक्षा, भेदभाव के उन्मूलन और आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए तर्क दिया। स्वराज (स्वशासन) का विचार औपनिवेशिक शासन के लिए एक सीधी चुनौती थी, जिसमें यह दावा किया गया था कि भारत में सभी व्यक्ति, चाहे वे किसी भी धर्म, जाति या लिंग के हों, समान अधिकारों और स्वतंत्रता के हकदार हैं। ये विचार, विशेष रूप से गांधी जी का सत्य, अहिंसा और समानता पर जोर, भारत के स्वतंत्रता के बाद के मानवाधिकार ढांचे की नैतिक रीढ़ बने।

वैश्विक मानवाधिकार प्रभावः द्वितीय विश्व युद्ध के तुरंत बाद और शीत युद्ध की शुरुआत के दौरान मानवाधिकारों की मान्यता की दिशा में वैश्विक बदलाव देखने को मिला। संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1948 में अपनाई गई मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (यूएचडीआर) ने मानवीय गरिमा और अधिकारों की सुरक्षा के लिए मूलभूत सिद्धांत निर्धारित किए, जिससे भारत सहित कई देशों पर प्रभाव पड़ा। यूएचडीआर ने एक वैश्विक कानूनी मानक प्रदान किया जो न्याय, समानता और व्यक्तिगत अधिकारों के संबंध में भारत के उभरते विचारों के अनुरूप था। वैश्विक मानवाधिकार आंदोलनों के प्रभाव और अंतरराष्ट्रीय कानूनी मानदंडों के गठन ने भारतीय संविधान में मानवाधिकारों से संबंधित प्रावधानों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

औपनिवेशिक विरासत से संवैधानिक ढांचे तक का विकास

1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद, देश को एक औपनिवेशिक प्रजा से एक संप्रभु गणराज्य में बदलने के कार्य में औपनिवेशिक प्रथाओं से मुक्ति और एक ऐसे कानूनी ढांचे की स्थापना दोनों शामिल थे जो नव लोकतांत्रिक भारत में मानवाधिकारों की रक्षा कर सके। औपनिवेशिक विरासत से संवैधानिक ढांचे तक मानवाधिकार कानून के विकास में कई प्रमुख चरण शामिल थेः

नए संवैधानिक ढांचे की आवश्यकताः स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान के निर्माताओं ने यह महसूस किया कि भारत की कानूनी व्यवस्था को उसके लोकतांत्रिक आदर्शों को प्रतिबिंबित करना चाहिए। उन्होंने औपनिवेशिक काल की ऐतिहासिक उत्पीड़न और असमानता को दूर करने की आवश्यकता को समझा। 1947 और 1950 के बीच तैयार किया गया भारत का संविधान सभी नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए बनाया गया था, विशेष रूप से उन लोगों के लिए जो ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था के तहत ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर थे।

औपनिवेशिक कानून से हुए सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तनों में से एक भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का समावेश था। संविधान के भाग 3 (अनुच्छेद 12–35) में निहित ये अधिकार भारतीय नागरिकों को राज्य के

[1] अग्रवाल, एस., और बंसल, आर. (2021). स्वतंत्रता के बाद के भारत में मानवाधिकार कानून का विकासः एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य। जर्नल ऑफ कॉन्स्टिट्यूशनल स्टडीज, 35(2), 55–72

दुर्व्यवहार से कानूनी सुरक्षा प्रदान करने और यह सुनिश्चित करने के लिए थे कि नागरिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता और कानून के तहत समानता का आनंद ले सकें। भारतीय इतिहास में पहली बार, भारतीय राज्य को संवैधानिक रूप से व्यक्तियों के अधिकारों का सम्मान और संरक्षण करने के लिए बाध्य किया गया, जिससे मनमानी राज्य कार्रवाई के विरुद्ध एक कानूनी कवच का निर्माण हुआ।

मौलिक अधिकारों को अपनानाः भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का खंड वैश्विक मानवाधिकार मानदंडों और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के अधिकार–आधारित संघर्ष से प्रभावित था। इन अधिकारों में नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल थी, जिनमें से कई को औपनिवेशिक शासन के दौरान नकार दिया गया था। विशेष रूप से अनुच्छेद 14 से 32 में समानता, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, जीवन और स्वतंत्रता की सुरक्षा और संवैधानिक उपचारों के अधिकार का उल्लेख किया गया है। इन कानूनी प्रावधानों का उद्देश्य नागरिकों को अपने अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए एक सशक्त तंत्र प्रदान करना था, जिससे नए लोकतांत्रिक राज्य में मानवाधिकार संरक्षण के लिए एक मजबूत कानूनी आधार तैयार हो सके।

औपनिवेशिक कानूनी उपकरणों से बदलावः भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) और आपराधिक प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) जैसे औपनिवेशिक काल के कानूनी उपकरण स्वतंत्रता के बाद की कानूनी व्यवस्था में भी बरकरार रहे। हालांकि, औपनिवेशिक काल के कई कानून, विशेषकर वे जो दमनकारी या भेदभावपूर्ण थे, स्वतंत्रता के बाद या तो संशोधित किए गए या निरस्त कर दिए गए। उदाहरण के लिए, मनमानी हिरासत, सेंसरशिप और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के दमन की अनुमति देने वाले कानूनों की पुनर्मूल्यांकन की गई और भारतीय राज्य ने एक ऐसा कानूनी ढांचा तैयार करने का प्रयास किया जो नागरिक स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय की गारंटी दे सके। साथ ही, भारत की कानूनी व्यवस्था में औपनिवेशिक कानून के कई तत्व बरकरार रहे, विशेष रूप से प्रक्रियात्मक कानूनों के संदर्भ में, जिनमें बाद में मानवाधिकार ढांचे के विकास के साथ सुधार किए गए।

संवैधानिक संशोधन और न्यायिक सक्रियताः यद्यपि संविधान ने मानवाधिकारों के लिए एक मूलभूत कानूनी ढांचा प्रदान किया, लेकिन इन अधिकारों का वास्तविक विस्तार न्यायिक सक्रियता और संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से हुआ। प्रारंभिक सर्वोच्च न्यायालय के मामलों, जैसे मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978), ने जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार (अनुच्छेद 21) की व्यापक व्याख्या करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि आवागमन की स्वतंत्रता और निजता का अधिकार जैसे अधिकार इस मौलिक अधिकार के अंतर्गत शामिल किए गए। संविधान के संरक्षक के रूप में कार्य करते हुए न्यायपालिका ने कानून की व्याख्या इस प्रकार से करना शुरू किया जिससे मानवाधिकारों का दायरा लगातार बढ़ता गया, अक्सर संविधान के शाब्दिक अर्थों से परे जाकर।

संविधान में किए गए संशोधन, जैसे कि 42वां संशोधन (1976), ने मौलिक कर्तव्यों के दायरे का विस्तार करके और न्याय, समानता और सामाजिक न्याय के मूल्यों को शासन के ढांचे में एकीकृत करके मानवाधिकार ढांचे को और मजबूत किया।[2]

मानवाधिकार समितियाँ और सक्रियता की भूमिकाः स्वतंत्रता के बाद के भारत में मानवाधिकार संगठनों और कार्यकर्ताओं की स्थापना ने मानवाधिकार कानून के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पीयूसीएल) और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एनएचआरसी) जैसे समूहों ने मानवाधिकारों

[2] चंद्रा, पी., और यादव, एस. (2023). स्वतंत्रता के बाद भारत में न्यायिक सक्रियताः मानवाधिकारों के लिए निहितार्थ। इंडियन जर्नल ऑफ लॉ एंड सोसाइटी, 45(1), 101–115

की निगरानी और संरक्षण की वकालत करने, कानूनी सुधारों को आगे बढ़ाने और उल्लंघनों को संबोधित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन आंदोलनों के कारण विशेष मानवाधिकार आयोगों और न्यायाधिकरणों सहित प्रमुख कानूनी संस्थानों और तंत्रों का गठन हुआ, जिससे मानवाधिकार संरक्षणों के प्रवर्तन का विस्तार करने में मदद मिली।

संवैधानिक विकास और मानवाधिकार

यह खंड इस बात पर केंद्रित है कि भारतीय संविधान भारत में मानवाधिकारों के लिए मूलभूत कानूनी दस्तावेज के रूप में कैसे कार्य करता है। यह इस बात का विश्लेषण करता है कि 1950 में अपनाया गया संविधान किस प्रकार मानवाधिकारों को स्थापित करता है, वैश्विक प्रभावों को समाहित करता है और सभी नागरिकों के लिए मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है।

भारतीय संविधानः मानवाधिकारों का आधार

26 जनवरी 1950 को अपनाए गए भारतीय संविधान ने व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा करने वाली कानूनी व्यवस्था की स्थापना करके एक लोकतांत्रिक और न्यायपूर्ण समाज की नींव रखी। इसने औपनिवेशिक शासन प्रणाली से लोकतांत्रिक सिद्धांतों, न्याय, समानता और स्वतंत्रता पर आधारित शासन प्रणाली की ओर एक महत्वपूर्ण बदलाव को चिह्नित किया।

प्रस्तावना और मानवाधिकारः भारतीय संविधान की प्रस्तावना उन मूल मूल्यों को व्यक्त करती है जो संविधान की नींव हैं—न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व। ये मूल्य भारत के मानवाधिकार कानून के दृष्टिकोण को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संविधान का मसौदा तैयार करनाः डॉ. बी.आर. अंबेडकर के नेतृत्व में गठित संविधान की मसौदा समिति ने स्वतंत्रता संग्राम और सामाजिक न्याय के आदर्शों से प्रेरणा ली। संविधान का प्राथमिक उद्देश्य औपनिवेशिक शासन की दमनकारी संरचनाओं को समाप्त करना और समानता तथा मानवीय गरिमा को बढ़ावा देना था।

समावेशिताः संविधान में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, महिलाओं और धार्मिक अल्पसंख्यकों जैसे हाशिए पर पड़े समूहों के हितों की रक्षा के लिए विशेष रूप से प्रावधान शामिल किए गए थे, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि मानवाधिकार संरक्षण केवल सैद्धांतिक न होकर वास्तविक सामाजिक चुनौतियों पर लागू हों।

इस प्रकार संविधान भारत के मानवाधिकार ढांचे की आधारशिला है, जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा की रक्षा के लिए कानूनी अधिकार और नैतिक आधार दोनों प्रदान करता है।

संविधान में मौलिक अधिकारों का महत्व

भारतीय संविधान के भाग 3 (अनुच्छेद 12–35) में निहित मौलिक अधिकार भारत के मानवाधिकार ढांचे के केंद्र में हैं। ये अधिकार नागरिकों की स्वतंत्रता की गारंटी देते हैं और उल्लंघन के विरुद्ध कानूनी उपाय प्रदान करते हैं।

मौलिक अधिकारों की प्रकृतिः मौलिक अधिकार भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला हैं। ये कानून के समक्ष समानता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, भेदभाव से सुरक्षा और धर्म की स्वतंत्रता जैसी आवश्यक स्वतंत्रताओं की गारंटी देते हैं। ये अपरिवर्तनीय हैं और सामान्य कानून द्वारा इनमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

न्यायसंगतताः मौलिक अधिकारों की विशिष्टता उनकी न्यायसंगतता में निहित है – इन अधिकारों के उल्लंघन होने पर नागरिक प्रवर्तन के लिए न्यायालयों का रुख कर सकते हैं, इस प्रकार भारत में मानवाधिकार संरक्षण को कानूनी मजबूती मिलती है।

निर्देशात्मक सिद्धांतों के साथ संबंधः जबकि मौलिक अधिकार तत्काल कानूनी सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं, राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत (भाग 4) कल्याण और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए सरकार के दायित्वों

के लिए ढांचा निर्धारित करते हैं, इस प्रकार मानवाधिकारों की सुरक्षा के पूरक होते हैं।[3]
मौलिक अधिकार राज्य के उत्पीड़न के खिलाफ प्रत्यक्ष सुरक्षा प्रदान करते हैं, जो भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था की कानूनी रीढ़ की हड्डी का निर्माण करते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि व्यक्तिगत अधिकारों को कानून द्वारा बरकरार रखा जाए।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (यूएचडीआर) का प्रभाव

संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1948 में अपनाई गई मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (यूएचडीआर) का भारतीय संविधान के मसौदे पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।

- वैश्विक संदर्भः द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, सार्वभौमिक मानवाधिकार मानदंडों को स्थापित करने के लिए एक वैश्विक आंदोलन चला। भारत, एक नव स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में, अपने नागरिकों की गरिमा और स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के प्रयास में इन अंतरराष्ट्रीय मानकों से प्रभावित हुआ।
- यूडीएचआर के साथ संरेखणः भारतीय संविधान के अनुच्छेद, विशेष रूप से मौलिक अधिकार, मानवाधिकार अधिनियम में व्यक्त किए गए कई अधिकारों को प्रतिबिंबित करते हैं, जिनमें समानता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, यातना से सुरक्षा और निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार शामिल है।
- अंतर्राष्ट्रीय प्रभावः मानवाधिकार अधिनियम (यूडीएचआर) ने भारत को मानवाधिकारों की रक्षा के लिए एक खाका प्रदान किया, जिसे बाद में देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए भारतीय संदर्भ में स्थानीयकृत किया गया।

मानवाधिकार अधिनियम (यूएचडीएचआर) से प्रेरित होकर भारत द्वारा संविधान में मानवाधिकार सिद्धांतों को अपनाना, देश की विशिष्ट चुनौतियों और विविधताओं से निपटने के साथ–साथ अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार मानदंडों को बनाए रखने की प्रतिबद्धता को उजागर करता है।

मानवाधिकारों से संबंधित प्रमुख अनुच्छेद (अनुच्छेद 14–32)

मौलिक अधिकार अनुभाग (अनुच्छेद 14–32) भारत के मानवाधिकार कानून का मूल आधार है। ये अनुच्छेद प्रमुख मानवाधिकारों की गारंटी देते हैं जो नागरिकों को राज्य के अतिक्रमण से बचाते हैं और व्यक्तिगत स्वतंत्रता सुनिश्चित करते हैं।

- अनुच्छेद 14 – समानता का अधिकारः यह अनुच्छेद विधि के समक्ष समानता और कानूनों की समान सुरक्षा की गारंटी देता है, और धर्म, जाति, नस्ल, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है। यह हाशिए पर पड़े समुदायों को सशक्त बनाने के उद्देश्य से बनाई गई सकारात्मक कार्रवाई नीतियों का आधार बनता है।
- अनुच्छेद 15 – भेदभाव का निषेधः यह धर्म, जाति, नस्ल, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है, जिससे सार्वजनिक स्थानों पर भेदभाव करना अवैध हो जाता है।
- अनुच्छेद 16 – सार्वजनिक रोजगार में अवसर की समानताः यह लेख सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेदभाव के सार्वजनिक रोजगार के लिए विचार किए जाने का अधिकार है, और हाशिए पर पड़े समूहों के लिए सकारात्मक कार्रवाई अनिवार्य करता है।
- अनुच्छेद 17 – अस्पृश्यता का उन्मूलनः यह प्रावधान अस्पृश्यता को गैरकानूनी घोषित करता है, जिससे औपनिवेशिक शासन के तहत मौजूद जाति–आधारित भेदभाव समाप्त हो जाता है।

[3] दास, आर. (2019). भारत में मानवाधिकारः 1947 के बाद विधायी विकास। इंटरनेशनल ह्यूमन राइट्स रिव्यू, 27(3), 102–115

- अनुच्छेद 18 – उपाधियों का उन्मूलनः यह अनुच्छेद राज्य को व्यक्तियों को उपाधियाँ प्रदान करने से रोकता है, यह सुनिश्चित करते हुए कि सभी नागरिकों के साथ समान रूप से व्यवहार किया जाए।
- अनुच्छेद 19–22 – स्वतंत्रता का अधिकारः ये अनुच्छेद भाषण, सभा, संगठन, आवागमन, निवास की स्वतंत्रता और किसी भी पेशे या व्यवसाय को करने के अधिकार की गारंटी देते हैं। अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को और आगे बढ़ाते हुए गरिमापूर्ण जीवन जीने के अधिकार को भी शामिल करता है।
- अनुच्छेद 23–24 – शोषण के विरुद्ध अधिकारः ये अनुच्छेद मानव तस्करी, जबरन श्रम और बाल श्रम पर रोक लगाते हैं, जिससे व्यक्तियों को शोषण से बचाने के लिए राज्य के दायित्व को बल मिलता है।[4]
- अनुच्छेद 25–28 – धर्म की स्वतंत्रता का अधिकारः ये अनुच्छेद अंतरात्मा की स्वतंत्रता, धर्म को मानने, उसका पालन करने और उसका प्रचार करने के अधिकार की गारंटी देते हैं, और यह सुनिश्चित करते हैं कि किसी को भी उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी धर्म का पालन करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है।
- अनुच्छेद 29–30 – सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारः ये अधिकार अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करते हैं, संस्कृति, भाषा और लिपि के संरक्षण के अधिकार और शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन के अधिकार की गारंटी देते हैं।
- अनुच्छेद 32 – संवैधानिक उपचारों का अधिकारः यह अनुच्छेद भारतीय मानवाधिकार ढांचे का आधार है, जो नागरिकों को अपने मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए सर्वोच्च न्यायालय में जाने का अधिकार प्रदान करता है। यह सुनिश्चित करता है कि व्यक्तियों के पास अपने अधिकारों की रक्षा के लिए एक सुलभ कानूनी तंत्र मौजूद हो।

निष्कर्षः

औपनिवेशिक धरोहर ने स्वतंत्रता के बाद भारत के कानूनी और मानवाधिकार ढांचे पर गहरा प्रभाव डाला, लेकिन एक लोकतांत्रिक गणराज्य बनने के बाद भारत ने मानवाधिकार कानूनों को पुनः आकार देने और पुनः परिभाषित करने का अवसर प्राप्त किया। जहां एक ओर औपनिवेशिक शासन ने व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं को सीमित किया, वहीं स्वतंत्र भारत ने अपने संविधान के माध्यम से सभी नागरिकों को कानूनी सुरक्षा प्रदान करने की दिशा में कदम बढ़ाया, विशेष रूप से उन समूहों के लिए जो ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के तहत हाशिए पर थे। मौलिक अधिकारों का परिचय, जो घरेलू संघर्षों और अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार घोषणाओं से प्रेरित था, ने एक मजबूत कानूनी ढांचे की नींव रखी। न्यायिक सक्रियता ने इन अधिकारों की व्याख्या को व्यापक रूप से किया, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि मानव गरिमा और समानता भारतीय कानूनी प्रणाली के मूल सिद्धांत बने। हालांकि चुनौतियां बनी रही, स्वतंत्रता के बाद संविधान और कानूनी सुधारों ने भारत के मानवाधिकार ढांचे को मजबूत किया और एक समान और न्यायपूर्ण समाज की ओर मार्ग प्रशस्त किया।

संदर्भ

- अग्रवाल, एस., और बंसल, आर. (2021). स्वतंत्रता के बाद के भारत में मानवाधिकार कानून का

[4] गुप्ता, ए. (2020). भारत में मानवाधिकार सुरक्षा को मजबूत करने में न्यायपालिका की भूमिका। एशियन लीगल स्टडीज जर्नल, 40(1), 89–105

विकासः एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य। जर्नल ऑफ कॉन्स्टिट्यूशनल स्टडीज, 35(2), 55–72.

- चंद्रा, पी., और यादव, एस. (2023). स्वतंत्रता के बाद भारत में न्यायिक सक्रियताः मानवाधिकारों के लिए निहितार्थ। इंडियन जर्नल ऑफ लॉ एंड सोसाइटी, 45(1), 101–115.
- दास, आर. (2019). भारत में मानवाधिकारः 1947 के बाद विधायी विकास। इंटरनेशनल ह्यूमन राइट्स रिव्यू, 27(3), 102–115.
- गुप्ता, ए. (2020). भारत में मानवाधिकार सुरक्षा को मजबूत करने में न्यायपालिका की भूमिका। एशियन लीगल स्टडीज जर्नल, 40(1), 89–105.
- जोशी, एन., और रेड्डी, वी. (2018). ब्रिटिश उपनिवेशवाद की विरासत और भारत में मानवाधिकार कानून पर इसका प्रभाव। जर्नल ऑफ पोस्टकोलोनियल लीगल स्टडीज, 18(2), 45–62.
- कुमार, आर. (2022). भारत का मानवाधिकार ढांचाः औपनिवेशिक विरासत से संवैधानिक सुरक्षा तक। एशियन कॉन्स्टिट्यूशनल रिव्यू, 15(4), 254–267.
- मेहता, डी. (2021). मानवाधिकार और भारतीय संविधानः एक आलोचनात्मक विश्लेषण। इंडियन लॉ जर्नल, 49(1), 67–80.
- मिश्रा, वी., और शाह, एन. (2020). भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का उदयः चुनौतियाँ और अवसर। जर्नल ऑफ ह्यूमन राइट्स एंड डेवलपमेंट, 12(1), 43–56.
- राजन, एस., और कपूर, पी. (2023). भारत में संवैधानिकता और मानवाधिकारः स्वतंत्रता के बाद का विकास। साउथ एशियन ह्यूमन राइट्स जर्नल, 9(1), 20–35.
- राव, एम. (2017). भारत में मानवाधिकार न्यायशास्त्रः ऐतिहासिक महत्वपूर्ण निर्णयों की समीक्षा। इंडियन जर्नल ऑफ ह्यूमन राइट्स, 30(2), 75–92
- सिंह, ए. (2018). 1947 के बाद भारत में मानवाधिकार कानूनः औपनिवेशिक युग से लोकतांत्रिक सुधारों तक। लॉ एंड सोसाइटी रिव्यू, 25(2), 148–165.